ज्ञान तत्व 347

मंथन क्रमांक 6 महिला सशक्तिकरण कितनी समस्या कितना समाधान

कुछ बातें स्वयं सिद्ध हैं –

1 वर्ग निर्माण,वर्ग विद्वेष, वर्ग संघर्ष हमेशा समाज को तोडता है।

2 वर्ग निर्माण वर्ग सुरक्षा के नाम पर प्रांरभ होता है और सशक्त होते ही शोषण की दिशा में बढ जाता है।

3 वर्ग निर्माण सिर्फ प्रवृत्ति के आधार पर ही उपयोगी होता है। अन्य किसी आधार पर होने वाला वर्ग निर्माण धुर्तता का सहायक होता है तथा शराफत को कमजोर करता है।

4 महिला सशक्तिकरण के प्रयत्नों का उददेश्य वर्ग निर्माण मात्र होता है। लिग भेद के आधार पर महिला या पुरुष का संगठन बनना हमेशा घातक होता है। संस्था बनाई जा सकती है।

इस तरह हम कह सकते हैं कि महिला सशक्तिकरण एक समस्या है जिसे समाज में समाधान के रुप में प्रस्तुत किया जा रहा है। महिला और पुरुष अलग अलग व्यक्ति तक ही सीमित होते है। यदि हम पूरे भारत का सर्वे करें तो भारत में कुल मिलाकर एक दो लाख ही महिलाये होंगी क्योंकि अन्य महिलाये तो परिवार की सदस्य होती हैं। वे मॉ बहन बेटी पत्नी तो हो सकती हैं

किन्तु महिला के रुप में उनका तब तक कोई पृथक अस्तित्व नहीं होता जब तक वे अकेली न हों । यदि किसी महिला या पुरुष द्वारा तीन पैर की दौड अनिवार्य है और उसमें भी एक महिला और एक पुरुष का जुडना आवश्यक है तो ऐसी दौड में किसी एक इकाई को पृथक महत्व देना नुकसानदायक होता है। किसे मजबूत होना चाहिए यह तय करना उन दोनों का स्वतंत्र क्षेत्र है। इसमें कोई बाहर का व्यक्ति कोई नियम कानून नहीं बना सकता। क्योंकि बाहर का व्यक्ति तो स्वयं प्रतिस्पर्धी है तथा वह चाहेगा कि दोनों कभी एक होकर तीन पैर की दौड न जीत सकें। जब महिला का अपवाद स्वरुप ही पृथक अस्तित्व है तो महिला सशक्तिकरण शब्द या तो महत्वहीन है या घातक।

जो धुर्त लोग महिला और पुरुष के रुप में समाज को बांटकर अपना हित साधना चाहते हैं वे दहेज, सती प्रथा,पर्दा प्रथा,बहु विवाह, देव दासी आदि अनेक पुरानी परम्पराओं का उदाहरण देकर महिला अत्याचार प्रमाणित करते हैं। मेरे विचार में समय समय पर देशकाल परिस्थिति के अनुसार सामाजिक मान्यताए बदलती रहती हैं। किसी समय में यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते को ध्येय वाक्य माना गया था तो किसी समय में ढोल गवार शूद्र पशु नारी को। ये वाक्य समय समय पर परिस्थिति अनुसार बदलते रहते हैं। वर्तमान में विकृति मानी जाने वाली दहेज ,सती प्रथा,पर्दा प्रथा,बहुविवाह, देव दासी आदि की परम्पराए पुराने समय में महिला शोषण के निमित्त नहीं बनी थी बल्कि सामाजिक व्यवस्था के लिए इन्हें परम्पराओं के रुप में विकसित किया गया था। ये परम्पराएं बाद में परिस्थितियों के बदलाव होने से टूट गई। एक समय था जब बहुविवाह का अर्थ एक पुरुष की कई पत्नियों के साथ माना जाता था। तो अब भविष्य में ऐसा भी समय आने वाला है जब बहु विवाह का अर्थ एक महिला के साथ कई पुरुषों के विवाह से माना जाने लगेगा। न पहले वाली व्यवस्था विकृति थी और न ही भविष्य की व्यवस्था विकृति मानी जायेगी। विवाह,तलाक आदि व्यवस्थाएं आपसी सहमति से तथा सामाजिक मान्यताओं से चलती है,कानून से नहीं। नासमझ लोगों ने अनावश्यक इन परम्पराओं में कानून को घुसा दिया।

आमतौर पर यह प्रचारित किया जाता है कि महिलाये पुरुषों की काम वासना पूर्ति की साधन मात्र होती हैं। यह प्रचार पूरी तरह गलत है। सच्चाई यह है कि काम इच्छा पुरुषों की अपक्षा महिलाओं में अधिक मानी जाती है। यह अलग बात है कि प्राकृतिक कारणों से पति पत्नि के बीच पति को हमेशा आक्रामक स्वरुप में होना चाहिए और पत्नि को आकर्षक स्वरुप में। यह प्राकृतिक स्वरुप यदि दोनों में यथावत है तो इसे किसी का किसी पर अत्याचार नहीं कह सकते। यदि काम इच्छा महिलाओं में बहुत कम होती तो महिलाए एक उम्र के बाद पुरुष के अभाव में परेशान नहीं होतीं। महिलाओं पर समाज में भेदभाव का आरोप भी पूरी तरह गलत है। कानून में महिलाओं को समान अधिकार प्राप्त है। समाज में महिलाओं को पुरुषो की तुलना में अधिक सम्मान प्राप्त है। परिवार व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका पुरुष से कमजोर मानी जाती है लेकिन यह कमजोर भूमिका भी अत्याचार के रुप में नहीं कही जा सकती। एक कलेक्टर की पत्नी अपने दस पुरुष नौकरों पर अपना आदेश चलाती है। अनेक घरों में पुरुष महिलाओं को पीटते भी हैं तो अनेक घरों के पुरुष महिलाओं से मार भी खाते हैं। महिला और पुरुष का परिवार में कार्य विभाजन है और यह विभाजन सबकी सहमति से होता है। यदि परिवार में भोजन खराब बनेगा तो महिला डांट खाती है,और भोजन का अभाव है तो महिला पति को डाटती भी है। भारत में पिछले वर्षो में होने वाली लाखों किसान आत्महत्याओं में शायद ही एक दो महिलाओं ने आत्महत्या की होगी। क्योंकि यह पुरुष का दायित्व माना जाता है। समाज में एक मान्यता है कि यदि अत्याचारी व्यक्ति की मृत्यु हो जाये तो अत्याचार पीडित प्रसन्न

होता है। पति के मरने के बाद पत्नी जितना दुख व्यक्त करती है वह दुख उसका वास्तविक होता है, नाटक नहीं। मतलब साफ है कि यदि भले ही पति पत्नि के बीच पति अत्याचार करता हो किन्तु दोनों के बीच कोई ऐसी बात अवश्य है जो दोनों को जोडकर रखती है और इस जोड को कमजोर नहीं होने देना चाहती। यदि महिलाये यह जानती हैं कि पुरुष अत्याचारी होता है तो महिलाए सब कुछ समझते बूझते भी पति घर में स्वेच्छा से क्यों जाती है। यहॉ तक कि यदि कभी कभी उनके जाने में विलम्ब हो जाये तो वे सारी मर्यादाये छोडकर भी जाती है। इसका अर्थ है कि महिला अत्याचार का प्रचार पूरी तरह सोचा समझा षडयंत्र है।

प्राचीन समय में महिलाओ और पुरुषों को कुल मिलाकर समान अधिकार प्राप्त थे। किन्तु वे अधिकार योग प्रधान थे अर्थात कुछ मामलों में महिलाओं को विशेष अधिकार थे तो कुछ मामलो में कम। किन्तु कुल मिलाकर समान थे। ये अधिकारों का विभाजन भी या तो परिवार स्वयं करता था या सामाजिक व्यवस्था। स्वतंत्रता के बाद कानूनी व्यवस्था ने सबको समान अधिकार घोषित कर दिया किन्तु सामाजिक व्यवस्था में पुरानी योग समान प्रणाली जीवित रही।

समाज में दो प्रकार के परिवार है 1 पारम्परिक परिवार 2 आधुनिक परिवार। पारम्परिक परिवार की महिलाओं की संख्या 98 प्रतिशत है और आधुनिक परिवारो की करीब दो प्रतिशत । ये दो प्रतिशत आधुनिक महिलाये पूरे समाज का शोषण करना चाहती है। इन्हे सामाजिक व्यवस्था में तो विशेष अधिकार भी चाहिए और कानूनी व्यवस्था में समान अधिकार भी चाहिए। किसी आधुनिक महिला ने आज तक यह नहीं कहा कि उसे समान अधिकार चाहिए या विशेष अधिकार यदि पूरे भारत का सर्वे किया जाये तो ये दो प्रतिशत आधुनिक महिलाये अपने को 98 प्रतिशत पारम्परिक महिलाओं का प्रतिनिधि घोषित करती है। किन्तु यदि इनके व्यक्तिगत जीवन पर नजर डालें तो 98 प्रतिशत की तुलना में इन दो प्रतिशत का चारित्रिक मापदण्ड भी कमजोर होता है तथा पारिवारिक जीवन भी अधिक असंतोषप्रद होता है। यहॉ तक कि तलाक के मामले का भी प्रतिशत इन दो प्रतिशत आधुनिक महिलाओं में अधिक होता है। ये दो प्रतिशत आधुनिक महिलाएं सहजीवन के स्थान पर उच्श्रृंखलता को अधिक महत्व देती है और उसे ही स्वतंत्रता कहती है। यहॉ तक कि ये महिलाये सारी सुविधाये भी अपने परिवार तक समेट लेना चाहती है। पति को सामान्य नौकरी तो पत्नी को आरक्षित नौकरी। पति सामान्यतया लोकसभा में तो पत्नी आरक्षित सीट पर । यदि यह नियम बन जाये कि एक परिवार का एक ही सदस्य राजनीतिक पद या सरकारी नौकरी पा सकता है तो ये आधुनिक महिलाये आसमान सर पर उठा लेगी किन्तु न ये ऐसा होने देंगी न इनके पति।

कुछ दशक पूर्व पुरुष सशक्तिकरण के नाम से समाज में विकृति आई थी और उसके भी दुष्परिणाम हमें दिखे। अब महिला सशक्तिकरण का एक घातक नारा समाज में प्रचारित किया जा रहा है और वह नारा समस्या का समाधान न होकर नई समस्या पैदा कर रहा है। मैंने दिल्ली के राजघाट पर सरकार की तरफ से एक बडा बोर्ड देखा जिसमें लिखा है ''महिलाओं पर अत्याचार कानूनन अपराध है''। मैं आज तक नहीं समझा कि क्या समाज में किसी भी अन्य व्यक्ति पर अत्याचार करने की छूट प्राप्त है? ये महिलाओं शब्द लिखना वास्तव में बहुत घातक है। हमारे प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी, प्रसिद्ध संत बाबा रामदेव सरीखे लोग कन्या भ्रुण हत्या को रोकने का अभियान चला रहे है। मेरे विचार में बालक की भ्रूण हत्या तो नगण्य होती है फिर पूरी भ्रूण हत्या को ही यदि रोक दिया जाये तो कैसे गलत होगा ? इतना अवश्य है कि यदि पूरी भ्रूण हत्या को रोका गया तो महिला और पुरुष के बीच वर्ग विद्वेश वर्ग संघर्ष खडा करके अपनी राजनैतिक रोटी सेकने का काम नहीं हो पायेगा।

यदि इसी तरह महिला सशक्तिकरण का नारा विकसित होता रहा तो एक नई विकृति जन्म ले सकती है। कहा जाता है कि घरों में महिलाओं को दासी समझा जाता है। यदि भविष्य में यह प्रथा उलट जाये और घोषित रुप से दासी कहा जाने लगे तो क्या अन्तर होगा। यदि ऐसी विकृत प्रथा प्रचलित हो जाये कि पुरुष विज्ञापन देने लगे कि उन्हे एक ऐसी दासी चाहिए जो दिन में नौकरी का काम करे और रात में उसके साथ सोये भी। इस विज्ञापन के आधार पर वेतन भत्ते तय करने की प्रथा हो जाये तो आप सोचिये कि यह प्रथा कानून कैसे रोक पायेगा जबकि यह प्रथा वर्तमान पारिवारिक व्यवस्था से अधिक बुरी होगी।

परिवार में पति पत्नि के बीच अविश्वास की दीवार खडी की जा रही है। यह दीवार कितनी लाभदायक होगी यह तो भविष्य बतायेगा किन्तु यह दीवार परिवार व्यवस्था को तोडेगी अवश्य। छोटे बच्चों के संस्कार खराब होंगे। लाभ होना तो संदेहास्पद है किन्तु नुकसान होना निश्चित है । अब पुरानी परिवार और समाज व्यवस्था की ओर लौटना न तो संभव है न उचित किन्तु महिला सशक्तिकरण के नाम पर परिवार तोडक समाज तोडक अभियान भी बंद होने चाहिए। परिवार में कौन सशक्त हो,कार्य विभाजन कैसा हो यह परिवार का आंतरिक मामला है उन्हें मिल बैठकर तय करने दीजिए। कोई कानून बनाना उचित नहीं। यदि उनमें आपसी सहमति नहीं है तो उन्हे अलग अलग

मार्ग पर चलने की स्वतंत्रता दीजिए। अलग होने में भी कोई कानूनी बंधन उचित नहीं। मेरे विचार में एक ही समाधान है कि भारत में व्यक्ति को एक इकाई माना जाये। सबको समान अधिकार माने जाये। कानून किसी को विशेष अधिकार न दे तथा देश सवा सौ करोड व्यक्तियों और परिवारों गांवो का संघ हो। धर्म, जाति, लिंग के आधार पर होने वाले सब प्रकार के भेद भाव मूलक कानून समाप्त कर दिये जाये।

मंथन कमांक 7 न्यायिक सकियता समस्या या समाधान

सिद्धांत रुप से न्याय तीन प्रकार के होते हैं–1 प्राकृतिक न्याय 2 संवैधानिक न्याय 3 सामाजिक न्याय। न्याय प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तिगत अधिकार होता है,सामूहिक अधिकार नहीं। तंत्र प्रत्येक व्यक्ति के प्राकृतिक न्याय की सुरक्षा की गारण्टी देता है। इसलिये व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकार की सुरक्षा तंत्र का दायित्व होता हैं। संवैधानिक न्याय तंत्र स्वेच्छा से व्यक्ति या व्यक्ति समूह को दे सकता है। संवैधानिक अधिकार देना तंत्र का कर्तव्य होता है,दायित्व नहीं। सामाजिक न्याय सिर्फ समाज का ही कर्तव्य होता है। सामाजिक मामलों में तंत्र की भूमिका शून्य होती है। न उसका दायित्व होता है न ही कर्तव्य। तंत्र सामाजिक मामलों में समाज की सहायता मात्र कर सकता है किन्तु हस्तक्षेप नहीं कर सकता। स्वतंत्रता के समय हमारे संविधान बनाने वालों को दायित्व, कर्तव्य, प्राकृतिक संवैधानिक सामाजिक न्याय आदि का पर्याप्त अनुभव नहीं रहा होगा इसलिये वे इन सबको साफ साफ अलग नहीं कर सके। दूसरी बात यह भी है कि उन लोगों ने भारतीय चिन्तन की मौलिक सोच को किनारे करके विदेशी संविधानों की नकल की। तीसरी बात यह भी रही है कि हमारे संविधान बनाने वालों की नीयत साफ नहीं थी। यही कारण रहा कि उन्होंने लोक को अवयस्क घोषित करके तंत्र को कस्टोडियन अर्थात् संरक्षक घोषित कर दिया। स्वाभाविक है कि वयस्क होने के लिये संरक्षित के सभी सामाजिक तथा संवैधानिक अधिकार संरक्षक के पास ही होते हैं जो वयस्क होने के बाद मिल जाते हैं।

लोकतंत्र में तंत्र तीन समकक्ष इकाइयों को मिलाकर बनता है। ये तीनों इकाईयॉ किसी संविधान से संचालित होती हैं। वे इकाइयॉ हैं– (1) विधायिका (2) न्यायपालिका (3) कार्यपालिका। तीनों इकाइयां अपने अपने दायित्व पूरे करने के लिये स्वतंत्र होती हैं। साथ ही वे दूसरी इकाइयों के लिये सहायक की भूमिका में भी होती हैं तथा नियंत्रक की भूमिका में भी। इसका अर्थ हुआ कि यदि कोई इकाई कभी पिछड रही होती है तो अन्य दो इकाइयां उसकी पूरक का काम करती हैं तथा यदि कोई इकाई कभी अपनी सीमाऍ तोडकर उच्श्रृंखलता की दिशा में बढती हैं तब अन्य दो इकाइयां उस पर लगाम लगाने का भी काम करती हैं। हमारे संविधान निर्माताओं ने भूलवश या जानबूझकर संविधान संशोधन तक के असीम अधिकार संसद को दे दिये। इस अधिकार के कारण तीनों इकाइयों में शक्ति संतुलन असंतुलित हो गया। इस अधिकार का अनैतिक दुरुपयोग करते हुए हमारी विधायिका ने संविधान बनने के एक वर्ष बाद ही लगातार न्यायपालिका तथा कार्यपालिका के अधिकारों में कटौती करनी शुरु कर दी। यहॉ तक कि अप्रत्यक्ष रुप से न्यायपालिका तथा कार्यपालिका विधायिका की गुलाम सरीखी हो गई। सन तिहत्तर में न्यायपालिका ने थोडी हिम्मत करके केशवानन्द भारती प्रकरण के माध्यम से विधायिका की तानाशाही पर रोक लगानी चाही। किन्तु उसे कार्यपालिका अर्थात राष्ट्रपति का पर्याप्त समर्थन नहीं मिला। परिणाम स्वरुप सन पचहत्तर के आपातकाल न भारत में सम्पूर्ण तानाशाही ला दी। आपातकाल के बाद लोक ने हस्तक्षेप किया और तंत्र के तीनों अंगो को तानाशाही की कैद से मुक्त कराया।

आपातकाल के बाद मिली जुली सरकारों का युग आया। न्यायपालिका धीरे धीरे मजबूत होने लगी। अटल जी की सरकार आते तक न्यायपालिका लगभग विधायिका के बराबर ही एक दूसरे की पूरक और नियंत्रक के रुप में आ चुकी थी। यद्यपि दोनों ही सन पचास से ही कार्यपालिका को दबाकर रखे जो आज भी जारी है। आज भी न्यायपालिका के छोटे से छोटे जज तथा विधायिका के छोटे से छोटे सांसद विधायक और कभी कभी तो उनके चमचे तक बडे बडे सरकारी अधिकारी या पुलिस वाले की अपनी सीमा में जो दुर्गति करते हैं वह किसी से छिपा नहीं हैं। अटल जी के बाद जब मनमोहन सिंह सरीखे शरीफ और लोकतंत्र की दिशा में सर्वाधिक सकिय व्यक्ति प्रधानमंत्री बने तो न्यायपालिका अधिक सशक्त होने लगी। यह सकियता यदि न्यायिक प्रकिया की दिशा में होती तब तो वह सकियता तंत्र सहायक होती किन्तु न्यायपालिका की यह सकियता विधायिका की तुलना में न्यायिक सर्वोच्चता स्थापित करने की छीना झपटी की ओर बढी और ऐसी सकियता घातक सिद्ध हुई।

न्यायपालिका का दायित्व होता है प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा। यह सुरक्षा प्रत्येक व्यक्ति के लिये किसी अन्य व्यक्ति,व्यक्ति समूह,समाज या राज्य सहित सभी इकाईयों से आवश्यक होती है। किसी अन्य इकाई से तो सुरक्षा संविधान करता है किन्तु यदि संविधान ही अतिक्रमण करने लगे तब समस्या पैदा होती है। ऐसी स्थिति में संविधान की कोई धारा ऐसी स्वतंत्रता का अतिक्रमण करती है तो न्यायपालिका ऐसे संविधान संशोधन को रदद भी

कर सकती है। इस दायित्व के साथ साथ न्यायपालिका को कुछ संवैधानिक अधिकार भी दिये गये हैं। न्यायपालिका संविधान विरुद्ध कानून, कानून विरुद्ध आदेश और आदेश विरुद्ध किया को भी रदद कर सकती है। न्यायपालिका सीमा के बाहर किये गये ऐसे संविधान संशोधन,कानून,आदेश और किया को रोक तो सकती है किन्तु कोई नई व्यवस्था नहीं दे सकती। न्यायपालिका को कहीं से यह अधिकार नहीं कि वह किसी संविधान, कानून, आदेश या किया के लिये कोई आदेश दे सके या संशोधित कर सके। न्यायपालिका जब अति सकियता की ओर बढी तो वह अपनी सीमाएँ भूल गई और वह न्यायिक आदेशों की अपेक्षा प्रशासनिक तथा विधायी आदेश देने लगी। न्यायपालिका ने जनहित याचिकाएँ सुनने का असंवैधानिक आदेश देकर बदनाम और उच्श्रृंखल विधायिका के घोडे को जब लगाम लगाई तो लोक ने न्यायपालिका की भरपूर प्रशंसा और उत्साह वर्धन किया। न्यायपालिका ने जब कालेजियम सिस्टम बनाने,जैसा भी अधिकार विहीन आदेश दिया तब भी न्यायपालिका की कोई आलोचना नहीं हुई किन्तु धीरे धीरे न्यायपालिका को प्रशंसा में मजा आने लगा और विधायिका या कार्यपालिका को नीचा दिखाना उसकी आदत सी बन गई। मनमोहन सिंह के पूर्व तक हर राजनेता डंके की चोट पर संसद सर्वोच्च की बात कहता था और तर्क देता था कि तंत्र की तीन इकाइयों में एक मात्र वही अकेली इकाई है जो सीधे जनता द्वारा चुनी जाती है तो मनमोहन सिंह के आने के बाद हर अधिवक्ता या न्यायिक प्रकिया से जुडा चपरासी भी डंके की चोट पर न्यायपालिका सवोच्च की बात इस तर्क के साथ कहता है कि न्यायपालिका को संविधान सहित हर मामले में समीक्षा का अंतिम अधिकार है। मनमोहन सिंह के कार्यकाल तक न्यायपालिका का मनोबल लगातार बढता रहा। न्यायपलिका ने न कभी प्रधानमंत्री की परवाह की, न राष्ट्रपति की। मनमोहन सिंह के कार्यकाल में न्यायपालिका ने बहुत अशोभनीय तरीके से प्रधानमंत्री के निर्णय के लिये तथा फांसी की सजा के लिये राष्ट्रपति के निर्णय के लिये भी एक समय सीमा तय कर दी। लेकिन न्यायपालिका यह भूल गई कि उसने अपने निर्णय के लिये आज तक कोई समय सीमा नहीं बनाई है। फांसी की सजा प्राप्त व्यक्ति यदि उस सीमा से अधिक समय तक राष्ट्रपति की दया याचिका के निर्णय के अभाव में जेल में बन्द रहा तो न्यायपालिका ने ऐसे कार्य को उस व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन माना किन्तु कोई व्यक्ति न्यायपालिका के निर्णय की प्रतीक्षा में दस दस वर्ष जेल में रहकर निर्दोष छूटता है तो कभी न्यायपालिका ने अपना दोष नहीं माना। बल्कि कभी कभी तो ऐसे न्यायिक विलम्ब के लिये भी न्यायपालिका कार्यपालिका पर ही दोष मढकर स्वयं को पाक साफ सिद्ध रखने की चेष्टा करती रही। मैं मानता हूँ कि सभी अधिवक्ता न्यायपालिका को भगवान की तरह प्रचारित करते रहते हैं। मीडिया या अन्य लोग भी न्यायिक अपमानना के डण्डे के भय से या तो उनकी प्रशंसा करते रहते हैं या चुप रहते हैं किन्तु स्पष्ट है कि किसी निर्दोष व्यक्ति को आवश्यकता से एक दिन भी अधिक जेल में रखना उसके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है और ऐसा उल्लंघन करने में कहीं न्यायपालिका भी दोषी है तो उसे उत्तरदायी होना चाहिये। यह अलग बात है कि न्यायिक सकियता को ढाल बनाकर न्यायपलिका ने तो विधायिका और कार्यपालिका को उत्तरदायी बना दिया किन्तु न्यायिक गलतियों के लिये उसने न कभी अपनी समीक्षा की न ही कोई अन्य तंत्र विकसित किया जो ऐसे विलम्ब के लिये न्यायपालिका की समीक्षा कर सके।

न्यायपालिका जानती है कि लंबित मुकदमों के अंबार लगे हैं। न्यायपालिका इसके लिये जजों की कमी का रोना रोती है। विधायिका के भी अपने तर्क हैं। भारत में जितने प्रतिशत न्यायाधीशों के स्वीकृत पद खाली हैं उससे अधिक प्रतिशत के स्वीकृत पद पुलिस,स्कूल, अस्पताल जैसे अनेक आवश्यक स्थानों पर भी खाली हैं। यदि कोई न्यायिक पदाधिकारी भावुक होकर अपने न्यायिक पदों की पूर्ति प्राथमिकता के आधार पर कराने में सफल हो जावे तो पुलिस, शिक्षक और अस्पतालों का क्या होगा? उनकी चिंता कौन करेगा? क्या न्यायिक प्रकिया देश की अन्य समस्याओं से अधिक प्राथमिकता रखती है कि चाहे अन्य पद भले ही न भरे किन्तु न्यायिक पद अवश्य भरे जावें। अरुण जेटली ने जब हिम्मत करके टिप्पणी की थी कि अब न्यायपालिका ही देश का बजट भी बनाना शुरु कर दे तब न्यायपालिका निरुत्तर थी । बात भी सच है । न्यायपालिका आपराधिक मुकदमों के निर्णय में विलम्ब की कीमत पर दिन रात पर्यावरण प्रदूषण के लिये कभी दिल्ली सरकार तो कभी किसी अन्य को फटकार लगाने की वाहवाही लूटने में व्यस्त रहेगी तो आपराधिक मुकदर्मो में विलम्ब स्वाभाविक है। हमारी न्यायपालिका सरकार को बिना मांगे सलाह देती है कि वह नक्सलवाद के समाधान के लिये बातचीत का मार्ग अपनावे। मैं नहीं समझता कि यह सलाह किसी भी रुप में न्यायिक प्रकिया का भाग है। न्यायपालिका उत्तराखंड में आई बाढ के लिये कार्यपालिका से प्रश्न करती है तो कभी दिल्ली की गाडियों में काले शीशे बन्द करने का फर्मान सुनाती है। न्यायपालिका रोज ही बैठे ठाले पेशेवर जनहित याचिका दाखिल करने वालों को भी न्यायिक प्रकिया में शामिल करके स्वयं को ओवर लोडेड करती रहती है तो दोष किसका? यदि हम अस्पताल के डाकघरों की भर्ती रोक कर जज बढा भी दें और

न्यायपालिका जनहित याचिकाओं में स्वयं को और ज्यादा सकिय कर ले तो क्या समाधान हुआ? क्यों नहीं न्यायपालिका अन्य सब काम छोडकर अपनी सारी शक्ति आपराधिक मुकदमों के निर्णय पर केन्द्रित कर लेती? जब लोक समस्या महसूस करेगा तब अपने आप सब लोग मिलकर समाधान सोचेंगे। किन्तु न्यायपालिका अनावश्यक पहल करके पूरी तंत्र व्यवस्था को छिन्न भिन्न करने की भूल कर रही है। बार बार प्रश्न उठता है कि यदि विधायिका या कार्यपालिका अपना काम न करे तो क्या न्यायपालिका भी हाथ पर हाथ धरे बैठी रहें? ऐसे प्रश्न एकपक्षीय उठाये जाते हैं। स्पष्ट है कि यदि न्यायपालिका गलत करें तो प्रश्न कौन और किससे किया जा सकता है? क्या न्यायपालिका मालिक है जिससे कोई प्रश्न नहीं हो सकता ? क्या न्यायपालिका भगवान है जिससे गलती नहीं हो सकती? कम से कम विधायिका से पांच वर्ष में एक बार चुनाव के समय तो प्रश्न हो सकता है किन्तु न्यायपालिका से तो वह भी व्यवस्था नहीं।

न्यायपालिका समय समय पर अपनी सीमाएँ भी खुद ही बदल लेती है। सिद्धान्त रुप से तो न्यायपालिका संविधान संशोधन की समीक्षा के अतिरिक्त हर मामले में कानून के अनुसार न्याय करने को बाध्य है। स्पष्ट है कि न्यायपालिका को स्वतंत्र न्याय का कभी कोई अधिकार नहीं। किन्तु न्यायपालिका अपनी सुविधा अनुसार जब चाहे तब स्वयं को न्यायकर्ता भी मानना शुरु कर देती है और जब चाहे तब कानून से बंधा हुआ मान लेती है। वस्तु स्थिति यह है कि तंत्र के दो भाग न्यायपालिका और कार्यपालिका अर्थात पुलिस मिलकर विधायिका द्वारा बनाई गई प्रकिया अनुसार न्याय और सुरक्षा देते हैं। पुलिस भी न्याय का एक अहम हिस्सा होती है। पुलिस द्वारा आरोपित अपराधी निर्दोष न होकर संदिग्ध अपराधी होता है। पता नहीं क्यों और कब से न्यायपालिका पुलिस को एक पक्षकार के रुप में मानकर अपराधी और पुलिस के बीच ही निष्पक्ष न्याय करने लगती है। संदिग्ध अपराधी भले ही घोषित अपराधी न हो किन्तु वह परीक्षण काल तक निर्दोष भी नहीं कहा जा सकता। न्यायपालिका सौ अपराधी भले ही छूट जायें किन्तु कोई निरपराध दडिण्त न हो मानकर न्यायालय में ऐसी बाल की खाल निकालती है कि एक अनुमान के अनुसार लगभग सत्तर प्रतिशत तक वास्तविक अपराधी निर्दोष छूट जाते हैं या जमानत पर छूटकर पुनः पुनः अपराध करते हैं । यदि कोई खूंखार अपराधी दर्जनों अपराध करने के बाद भी न्यायिक प्रकिया के अन्तर्गत जमानत पर छूटकर पुनः अपराध करें तो दोष किसका? यदि न्यायपालिका अनन्त काल तक या तो अपराधी का फैसला ही न करें या करे भी तो ऐसे अपराधी को सबूत के अभाव में मुक्त कर दे और पुलिस अति सकिय होकर उसे गैर कानूनी तरीके से सजा दे दे तो पुलिस द्वारा दी गई गैर कानूनी सजा अन्याय होगी या न्यायालय द्वारा कानूनी तरीके से अनन्तकाल तक लटकाये रखने का कार्य अन्याय है? न्यायपालिका ऐसी पुलिस की अति सकियता के मामलों में अधिक रुचि क्यों लेती है। यदि न्याय और कानून विपरीत दिशा में चलते हैं तो या तो कानून को न्याय की दिशा में सुधरना चाहिये अन्यथा कानून की तुलना में न्याय का पक्ष लिया जाना चाहिए। किसी अपराधी का निर्दोष छूटना पीडित पक्ष के प्रति अन्याय है। यदि ऐसा अन्याय बडी मात्रा में हो रहा है तो या तो कानून को सुधरना होगा अन्यथा समाज में स्वयं दण्ड देने की इच्छा जाग्रत होगी। आज यदि समाज में प्रत्यक्ष हिंसा का प्रभाव बढ रहा है तो उसका महत्वपूर्ण कारण है विलम्बित न्याय, अपराधियों का निर्दोष छूटना और पुलिस की गैर कानूनी सकियता के मामलो में न्यायपालिका की अतिसकियता । किसी पुलिस वाले ने जनहित की भावना से गैर कानूनी तरीके से किसी की हत्या कर दी तो यह कार्य अपराध न होकर गैर कानूनी मात्र ही होगा। तब तक जब तक उस पुलिस वाले ने अपने किसी व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये वह कार्य न किया हो। अपराध और गैरकानूनी का अंतर करने में कर्ता की नीयत महत्वपूर्ण होती है जो न्यायपालिका नहीं समझती या समझना नहीं चाहती। न्यायपालिका कानून की रक्षा के लिये न्याय की अन्देखी करे और पुलिस वाला न्याय के निमित्त कानून की अन्देखी करे तो हम न्यायलय की प्रशंसा करें या पुलिस की। अभी तो हम मानहानि के डर से पुलिस की प्रशंसा नहीं कर पाते किन्तु क्या लम्बे समय तक हम चुप रह सकते हैं? स्वाभाविक है नहीं।

अब सरकार बदली है । पुनः एक दलीय सरकार बनी है। अब तक न्यायपालिका सर्वोच्च के एकपक्षीय नारे को चुनौती मिलनी शुरु हुई है। किन्तु मेरे विचार में सर्वोच्च कौन का यह विवाद पहले भी गलत था और अब भी गलत है। यह सच है कि केशवानन्द भारती केस के माध्यम से न्यायपालिका ने विधायिका पर आंशिक नकेल डालकर भारत में लोकतंत्र को बचा लिया अन्यथा भारत का लोकतंत्र खतरे में था। तत्कालीन न्यायपालिका अपनी इस हिम्मत के लिये बधाई की पात्र है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि न्यायपालिका भी सर्वोच्चतम की छीना झपटी में लग जावे। लोकतंत्र में सर्वोच्च तो सिर्फ लोक ही होता है। तंत्र तो प्रवंधक मात्र होता है। तंत्र के तीनों भाग समकक्ष होते है, उपर नीचे नहीं। यह टकराव अनावश्यक है । फिर भी इसलिये हो रहा है कि तंत्र ने लोक को गुलाम या संरक्षित मानकर स्वयं को मालिक मान लिया है। तंत्र के दोनों भाग न्यायपालिका और विधायिका अपनी सर्वोच्चता की लडाई

इस तरह लड रहे हैं जैसे दो लुटेरे मिलकर माल लूट लें और बाद में बंटवारे के लिये आपस में ही छीना झपटी करें। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि दोनों स्वयं किनारे होकर लूट का माल वास्तविक मालिक लोक को वापस कर दें? मेरी सलाह है कि अब तंत्र को चाहिये कि वह लोक को अवयस्क की जगह वयस्क मानकर स्वयं को शासन की जगह प्रबंधक मान ले तो भारत का लोकतंत्र इस सर्वोच्चता के अनावश्यक विवाद से बच जायेगा।

नरेन्द्र मोदी का नोट बंदी आदेश

मैं लम्बे समय से नोट बंदी या विमुद्रीकरण का पक्षधर रहा हूँ। मैंने 20 वर्ष पूर्व से ही कई बार वह सारी प्रकिया ज्ञानतत्व में लिखी है। मैं समझता हूँ कि मोदी जी ने जो किया वह पूरी तरह ठीक है। यद्यपि मैं इसे अधिक अच्छे और प्रभावशाली रुप में लागू करने की योजना रखता था। उस योजना पर विस्तृत चर्चा मैं बाद में करुँगा।

नरेन्द्र मोदी ने जो निर्णय किया है वह निर्णय विपक्ष ने एकजुट होकर अस्वीकार कर दिया है। इसका अर्थ है कि नरेन्द्र मोदी और विपक्ष के बीच निर्णायक टकराव हो सकता है। इस नोट बंदी का प्रभाव सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर गंभीर रुप से होगा। यदि मध्यमवर्ग और सम्पन्न वर्ग मिलकर विपक्ष के साथ एकजुट हुआ तो यह मोदी जी के लिए भारी भी पड सकता है। क्या परिणाम होगा यह मैं नहीं कह सकता। चाहे मोदी जी को इससे निर्णायक विजय मिले या निणार्यक पराजय किन्तु इतना स्पष्ट है कि इस कदम का देश को बहुत बडा लाभ होगा। यदि विपक्ष साथ दिया होता तो यह लाभ कई गुना अधिक होता और विपक्ष देश को लाभ की तुलना में अपने राजनैतिक लाभ पर अडा रहा तब भी देश को लाभ तो होगा ही भले ही आंशिक ही क्यों न हो। मैं मोदी जी की कोई सहायता नहीं कर पा रहा किन्तु मेरी हार्दिक इच्छा है कि नरेन्द्र मोदी का यह आर्थिक प्रयास पूरी तरह सफल हो।

वर्तमान स्थितियों में मैं मोदी जी को यह सलाह दे सकता हूँ कि वे तत्काल एक संशोधित योजना घोषित कर दें जिसके अनुसार इनकम टैक्स की दर 10–20 और 30 की जगह 8–16 और 24 हो जाये इससे बहुत कुछ अफरा तफरी पर लगाम लग जायेगी।

कुछ लोगों ने शंका व्यक्त की है कि भारतीय जनता पार्टी ने घोषणा के कुछ घंटे पूर्व बैंक में करोडो रुपये जमा करा दिये। मैं नहीं समझ पाया कि यदि कोई अन्य दल अब भी बैंको में अपने रुपये जमा करा दे तो घोषणा के पूर्व या घोषणा के बाद जमा कराये गये पैसों में क्या फर्क पडेगा। क्या घोषणा के पूर्व बैंक में जमा रकम अधिकृत और बाद की अनाधिकृत मान ली जायेगी? मैं इस विषय में समझ नहीं पा रहा। कुछ लोग यह भी कह रहे है कि घोषणा के कुछ घंटे पूर्व कुछ लोगों को इस कदम का आभास या पता हो गया था लेकिन दूसरी ओर यही आरोप लगाने वाले यह भी कह रहे है कि मोदी जी को कुछ दिन रुककर और अधिक तैयारी करके, घोषणा करनी चाहिए थी। मैं नहीं समझता कि ये दोनों सलाह एक दूसरे के विपरीत है या नहीं। इस तरह की बात करने वालो की नीयत पर संदेह होता है। अन्य राजनैतिक दलों के विषय में तो मुझे कुछ नहीं कहना किन्तु इस घोषणा ने नीतिश कुमार के समक्ष एक परीक्षा की घडी ला दी है कि वे राष्ट्रहित को अधिक महत्व देते है या राजनैतिक हित को।

मंथन कमांक 8 – भारत की प्रमुख समस्याएँ और समाधान

भारत में कुल समस्याएँ 5 प्रकार की दिखती हैं–(1) वास्तविक (2) कृत्रिम (3) प्राकृतिक (4) भूमण्डलीय (5) भ्रम या असत्य।

(1) वास्तविक समस्याएँ वे होती हैं जो अपराध भी होती है तथा समस्या भी। ये समस्याएँ 5 प्रकार ही मानी जाती है– (1) चोरी,डकैती और लूट (2) बलात्कार (3) मिलावट और कमतौलना (4) जालसाजी धोखाधडी (5) बलप्रयोग हिंसा आतंकवाद। ये 5 प्रकार की समस्याएँ भारत में स्वतंत्रता के बाद लगातार बढ रही हैं सरकारे चाहे किसी की भी बनी हो। क्योंकि राज्य इन समस्याओं के समाधान में आवश्यकता से बहुत कम सकिय है।

(2) कृत्रिम समस्याएँ मुख्य रुप से 6 प्रकार की मानी जाती हैं– (1) चरित्र पतन (2) भ्रष्टाचार (3) जातीय कटुता (4) साम्प्रदायिकता (5) आर्थिक असमानता वृद्धि (6) श्रम,बुद्धि और धन के बीच बढती दूरी अर्थात श्रम शोषण। इन 6 समस्याओं के अतिरिक्त महिला उत्पीडन, वन अपराध असमानता, विदेशी कम्पनियों का संकट, वैश्यावृत्ति, ब्लैक, तस्करी, जुआ, शराब, अफीम आदि भी ऐसी समस्याएँ है जो या तो कृत्रिम है अथवा राज्य ने अनावश्यक अपने हाथ में लेकर इनको बढावा दिया है। ये समस्याएँ भी स्वतंत्रता के बाद लगातार इसलिए बढती गई है क्योंकि राज्य ने इन समस्याओं के समाधान में अनावश्यक अथवा आवश्यकता से अधिक सकियता दिखाई। अप्रत्यक्ष रुप से कहा जा सकता है कि ये समस्याएँ राज्य अपनी गल्तियों को छिपाने के लिए योजनापूर्वक बढाता है।

(3) प्राकृतिक इसमें बाढ, भूकम्प, बीमारियॉ, तूफान, अनावृष्टि या अतिवृष्टि आदि शामिल हैं। ये समस्याएँ स्वतंत्रता के बाद कुछ घटी हैं।

(4) भूमण्डलीय इसमें पर्यावरण प्रदूषण, आबादी वृद्धि, जल संकट, मानव स्वभाव तापवृद्धि, मानव स्वभाव स्वार्थ वृद्धि, उग्रराष्ट्रवाद आदि शामिल है। ये समस्याएँ भी पूरे विश्व की तरह ही भारत में भी लगातार बढ रही हैं क्योंकि भारत में इनके समाधान के लिए कोई मौलिक चिन्तन का अभाव है तथा भारत इन मामलों में दुनिया के अन्य देशों की अंध नकल करता रहता है।

(5) भ्रम या असत्य समस्याएँ अनेक हैं जैसे मंहगाई, शिक्षित बेरोजगारी, बढती गरीबी दहेज, मुद्रास्फीति का दुष्प्रभाव, अशिक्षा, बालश्रम, वैश्यावृत्ति, तस्करी, ब्लैकमेल आदि शामिल हैं। इनमें से कुछ समस्याएँ तो बिल्कुल ही अस्तित्वहीन है और उन्हें समाज में भ्रम फैलाने के लिए प्रचारित किया गया है। इन समस्याओं को राज्य इसलिए स्थापित करता है जिससे समाज का ध्यान वास्तविक समस्याओं से हटकर इन समस्याओं के समाधान में लग जाये।

वास्तविक समस्याओं का समाधान करना राज्य का दायित्व होता है और इसलिए प्राथमिकता का कम इस प्रकार होना चाहिए था कि पहली प्राथमिकता वास्तविक तथा उसी कम से चौथी प्राथमिकता भुमण्डलीय समस्याओं के समाधान के लिए होनी चाहिए थी। भ्रमपूर्ण समस्याओं से तो राज्य को बिल्कूल विपरीत हो जाना चाहिए था किन्तु स्वतंत्रता के बाद लगातार देखा जा रहा है कि प्राथमिकताओं के कम में वास्तविक समस्याएँ पाचवे नम्बर पर है और भ्रमपूर्ण समस्याएँ पहले नम्बर पर। विचित्र बात है कि जिन समस्याओं का कोई अस्तित्व ही नहीं है ऐसी समस्याओं के समाधान का प्रयत्न लगातार क्यों हो रहा है? महंगाई नाम की कोई समस्या सम्पूर्ण भारत में न कभी थी, न है। किन्तु पिछले 70 वर्षो से समाज में ऐसा असत्य प्रचार हुआ कि भारत का प्रत्येक नागरिक महंगाई के भ्रम से परेशान है।

पिछले दो वर्षो से नरेन्द्र मोदी जी की सरकार बनी है। उसके पूर्व की सरकारे लगातार साम्यवाद के पूर्णतः या आशिंक प्रभाव में थी। साम्यवाद का प्रभाव सभी समस्याओं के विस्तार का जनक माना जाता है। पश्चिम की अंध नकल भी समाधान में बाधक होती है। भारत ने या तो साम्यवाद की नकल की या पश्चिम की। दो वर्षो से नरेन्द्र मोदी सरकार धीरे धीरे भारतीय विचारधारा तथा पश्चिम की विचारधारा के बीच सामंजस्य स्थापित करके सुधार का प्रयास कर रही है। चोरी, डकैती, लूट, जालसाजी, भ्रष्टाचार, आर्थिक असमानता पर कुछ नियंत्रण हुआ है। नक्सलवाद अथवा कश्मीर का आतंकवाद धीरे धीरे समाप्त हो रहा है। किन्तु बलात्कार, श्रम शोषण और मिलावट पर अभी कोई परिणाम नहीं दिखा है। इसी तरह साम्प्रदायिकता पर भी पर्याप्त सुधार हुआ है। मुस्लिम साम्प्रदायिकता तो रुकी ही है किन्तु संघ परिवार की साम्प्रदायिकता भी संकट के घेरे में आती जा रही है। जातिवाद,महिला उत्पीडन जैसी कृत्रिम समस्याओं पर अभी काम नहीं हुआ है अथवा मोदी सरकार अभी इस पर कुछ समझ नहीं पा रही है।

सबसे बडी समस्या वर्ग निर्माण,वर्ग विद्वेष को बढाकर वर्ग संघर्ष की दिशा में रही है। इसका वास्तविक समाधान तो वर्ग समन्वय से ही संभव था किन्तु इसके ठीक विपरीत पिछली सरकारों ने वर्ग समन्वय को कमजोर करके वर्ग निर्माण और वर्ग विद्वेष को लगातार बढाया। ये आधार है धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रियता, उम्र, लिंग, गरीब अमीर, किसान मजदूर, शहर ग्रामीण आदि। इनमें मोदी जी ने भाषा के मामले में पहल करके करीब करीब ठीक दिशा पकड ली हैं। समान नागरिक संहिता की आवाज बुलंद करके साम्प्रदायिकता, जाति भेद, लिंग भेद, पर भी नकेल कसने की तैयारी है। अन्य मामलों में भी नरेन्द्र मोदी सरकार धीरे धीरे कदम उठा रही है। जिस तरह 67 वर्षो तक समस्याएँ बढी या बढायी गई और उनका जितना बडा भण्डार इक्कठा हो गया है। उन पर नियंत्रण करना कोई साधारण काम नहीं । उन परिस्थितियों में तो यह काम और भी कठिन हो जाता है जब जे एन यू से पढे हुये छात्र निकल कर न्यायपालिका और कार्यपालिका के महत्वपूर्ण पदों पर विराजमान हो तथा समाधानकर्ता की यह मजबूरी हो कि उसे इन सबको साथ लेकर ही आगे बढना होगा। आप कल्पना कर सकते हैं कि कार्य कितना कठिन है फिर भी नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व की भारत सरकार धीरे धीरे एक एक समस्या को हल करने की दिशा में निरंतर बढ रही है।

फिर भी अभी मोदी जी के लिए अनेक काम करने बाकी है जिनकी अभी शुरुवात भी नहीं हुई है। कृत्रिम उर्जा की भारी मूल्य वृद्धि की दिशा में अब तक कोई कदम नहीं बढाया गया है जबकि श्रम शोषण,आर्थिक असमानता,पर्यावरण प्रदूषण सहित सब प्रकार की आर्थिक समस्याओं के समाधान में इसका महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है।

समान नागरिक संहिता और समान आचार संहिता के बीच का अंतर या तो मोदी जी अब तक स्वयं नहीं समझ पाये है अथवा वे प्रतिक्षा कर रहे हैं। इसी तरह अपराध गैरकानूनी और असामाजिक समस्याओं के वर्गीकरण

की दिशा में भी कोई प्रयत्न नहीं दिख रहा है। मैं मानता हूँ कि भारत में विचार मंथन का अभाव इसके लिए सर्वाधिक दोषी है। हम सारा दोष सरकार पर ही नहीं डाल सकते। विचार मंथन ही सरकार को नई दिशा दे सकता है। हमें पूरा प्रयत्न करके अन्य उन मुददों पर सरकार को सलाह देनी चाहिए जिनके विषय में अब तक सरकार ठीक दिशा में नहीं सोच पा रही है।

मैं आश्वस्त हूँ कि नरेन्द्र मोदी के आने के बाद भारत की समस्याओं के समाधान की गति ठीक दिशा में और ठीक गति से आगे बढ रही है। हमारा कर्तव्य है कि हम इस गति को और बढाने में सहायक हों। हम निरंतर विचार मंथन को प्रोत्साहित करें,जनमत जागृत करें,सरकार को उचित सलाह भी दें तथा सरकार के सही कार्यो का पूरा पूरा समर्थन भी करें तभी इतनी पुरानी जड पकड चुकी समस्याओं का समाधान संभव हैं।

मंथन कमांक 9

विषय– किसान आत्महत्या की समीक्षा

किसी कार्य के परिणाम की कल्पना और यथार्थ के बीच जब असीमित दूरी का अनुभव होता है तब कभी कभी व्यक्ति आत्महत्या की ओर अग्रसर होता है। इसका अर्थ हुआ कि यदि परिणाम की कल्पना असंभव की सीमा तक कर ली गई अथवा किसी दुर्घटनावश परिणाम अप्रत्याशित हुए तभी व्यक्ति को असीमित दुख होता है। ऐसा व्यक्ति ही कभी कभी आत्महत्या कर लेता है। आत्महत्या करने वालों में सब प्रकार के लोग होते हैं। छात्र भी बडी संख्या में आत्महत्या करते हैं तो महिलाएँ अथवा व्यापारी भी। कभी कभी तो राजा तक आत्महत्या करते पाये जाते हैं। यह अलग बात है कि किसानों की आत्महत्या कुछ अधिक प्रचारित हुई।

किसान तीन प्रकार हैं–

(1) जो अपनी भूमि में स्वयं खेती करते है।

(2) जो अपनी भूमि में मजदूरों से खेती कराते है।

(3)जो उन्नत तकनीक तथा कृत्रिम उर्जा के सहारे खेती करते हैं।

ऐसे उन्नत किसानों को ही फार्महाउस वाला किसान कहा जाता है। जिन किसानों ने आत्महत्या की है उनमें फार्महाउस वाला उन्नत किसान लगभग नहीं है। जो किसान अपनी जमीन पर स्वयं खेती करता है और अपने उपयोग में लाता है,वह भी आत्महत्या नहीं करता। भारत में जिन लाखों किसानों ने आत्महत्या की है वे लगभग बीच वाले किसान थे जो छोटी जोत के मालिक थे और मजदूरों के माध्यम से खेती कराते रहे हैं। विचारणीय प्रश्न यह है कि किसी मजदूर ने आत्महत्या नहीं की। दूसरा विचारणीय प्रश्न यह भी है कि यदि खेती घाटे का सौदा है तो देश में लगातार कृषि उत्पादन बढ रहा है। ये दोनों प्रश्न सही होते हुये भी यह प्रश्न सच है कि बडी मात्रा में बीच वाले किसान आत्महत्या कर रहे है। इसके कई कारण हैं –

(1) स्वतंत्रता के बाद श्रम का मूल्य बढा और कृषि उत्पादन का मूल्य घटा। भारत में स्वतंत्रता के बाद मुद्रा का अवमूल्यंन 91 गुना हुआ है। इसका अर्थ है कि यदि सन 47 में किसी वस्तु का मूल्य 1 रु था और आज 91 रु है तो वह समतुल्य है । यदि हम श्रममूल्य का आकलन करें तो वह वर्तमान में 91 की तुलना में लगभग 170 हो गया है। दूसरी ओर यदि हम अनाज के मूल्य का आकलन करें तो वह दालों को छोडकर लगभग 45 गुना ही बढा है। इसका अर्थ हुआ कि श्रम मूल्य की तुलना में कृषि उत्पादन का मूल्य एक चौथाई ही रह गया है। उपर से मंहगाई का झूठा हल्ला उस बेचारे उत्पादक को और भी अधिक परेशान किये रहता है। वैसे भी हम देख सकते है कि यदि स्वतंत्रता के समय एक मजदूर को एक दिन का डेढ़ किलो अनाज देते थे तो आज 8 किलो दे रहे हैं। इसमें कुछ बढ़ती हुई विकास दर का भी योगदान है किन्तु किसान पूर्व की तुलना में चार गुना अधिक अनाज श्रमिक को देता है। साधारण किसान किसी तरह सामान्य रुप से तो अपना खर्च चलाता है किन्तु आकस्मिक विपत्ति के समय उसका धैर्य टूट जाता है और वह भावनाओं में बहकर आत्महत्या कर लेता है।

(2) किसान के उत्पादन का मूल्य बढ नहीं पाता क्योंकि अपेक्षाकृत सस्ती कृत्रिम उर्जा और तकनीक से खेती करने वालो के साथ वह बीच वाला किसान प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाता। उन्नत तकनीक से उत्पादित कृषि उत्पादन सम्पूर्ण कृषि उत्पादन का मूल्य बढने ही नहीं देता। साथ ही राजनैतिक व्यवस्था पर उपभोक्ताओं का प्रभाव अधिक रहता है और वे बाजार तथा राजनीति पर पूरी तरह हावी रहते है तो उपभोक्ता किसी भी रुप में किसी उत्पादन का मूल्य संतुलित होने ही नहीं देते। भले ही उत्पादक आत्महत्या ही क्यों न कर ले।

(3) किसानों का भावनात्मक रुप से जमीन के साथ मोह पैदा कर दिया जाता है जिससे किसान अपनी जमीन बेचकर या खाली छोडकर किसी अन्य दिशा में नहीं जा पाता। सामाजिक तथा राजनैतिक वातावरण किसानों की झूठी प्रशंसा करके उन्हें जमीन के साथ जोडे रखना चाहता है। यदाकदा राजनैतिक व्यवस्था भीख के बतौर कुछ

सुविधायें देकर भी ऐसे मजबूर किसानों को खेती के प्रति लगाव बनाये रखती है। इस तरह तीन ऐसे कारण है जो किसानों की आत्महत्या के कारण के लिए माने जाते है। स्पष्ट है कि अन्य लोगों की आत्महत्याएँ भले ही भावनात्मक कारणों से होती हों किन्तु किसानों की आत्महत्या में कोई भावनात्मक कारण न होकर मजदूरी ही एकमात्र कारण होती है।

यदि हम समाधान पर विचार करें तो समाधान भी साधारण बात नहीं है। कृषि उत्पादन का मूल्य बढा दिया जाये तब बडे किसान ही बहुत ज्यादा लाभान्वित होंगे। यदि खाद, बीज, बिजली, पानी सस्ता कर दिया जाये तब भी बडे किसान ही लाभान्वित होंगे। इन आत्महत्या करने वालों के हिस्से में कुछ नहीं आयेगा। श्रम का मूल्य कम नही किया जा सकता क्योंकि श्रम बुद्धि और धन की तुलना में बहुत ज्यादा असमानता हो गई है और श्रम का मूल्य और अधिक बढना चाहिए। किसानों की आत्महत्या रोकने के लिए श्रममूल्य वृद्धि को नहीं रोका जा सकता। मैं स्पष्ट कर दूँ कि वर्तमान समय में किसान आत्महत्या के नाम पर जो भी किसान आन्दोलन हो रहे है वे बडे किसानों के नेतृत्व में हो रहे है। ये किसान खाद, बिजली, पानी का मूल्य घटाने की बात करते है। ये किसान श्रममूल्य वृद्धि के भी विरुद्ध वातावरण बनाते है किन्तु ये बडे किसान खेती की दुर्दशा के मूल कारण को नहीं खोज पाते।

मैंने राष्ट्रीय और सामाजिक भावनाओं में बहकर व्यापार छोड दिया और जनहित में खेती का व्यापार करने लगा। 30 वर्षो तक पूरा पूरा परिश्रम करने के बाद भी मेरी स्थिति इतनी खराब हुई कि मेरे समक्ष आत्महत्या के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं था। मैंने सन 95 में हार मानकर खेती छोड दी। मैं स्पष्ट कर दूँ कि खेती छोडकर मेरे परिवार ने बहुत अच्छा किया। मुझे पूरा अनुभव है कि खेती घाटे का व्यवसाय है यदि उन्नत तकनीक से न किया जाये तो। इसका अर्थ हुआ कि जिस तरह सम्पूर्ण भारत में लघु उद्योग मरणासन्न है,छोटे व्यापारी परेशान है, छोटे उद्योगपति परेशान है उसी तरह आज छोटे किसान भी आत्महत्या कर रहे है क्योंकि सम्पूर्ण भारत में सब प्रकार के कार्यो का केन्द्रियकरण हो रहा है और इस केन्द्रियकरण की चपेट में छोटे किसान भी है। इसका अर्थ हुआ कि समस्या कही और है और समाधान कही और । किसानों की आत्महत्या रोकने का एक ही इमानदार समाधान हो सकता है कि कृत्रिम उर्जा का मूल्य इतना अधिक बढा दिया जाये कि उन्नत किसान मध्यम किसान और छोटे किसान एक दूसरे के साथ खुली प्रतिस्पर्धा कर सके या कम से कम इतना अवश्य हो कि तकनीक तकनीक वंचित का तथा श्रम का शोषण न कर सके। मैं जानता हूँ कि इस मूल्यवृद्धि का आयात निर्यात पर दुष्प्रभाव हो सकता है किन्तु उसका समाधान कठिन नहीं । कितने दुख की बात है कि स्वतंत्रता के बाद से लेकर सन 2010 तक लगभग सभी कृषि उत्पादनों पर टैक्स वसूला जाता था और वह टैक्स वसूल कर उपभोक्ताओं को सस्ता अनाज बांटने में खर्च किया जाता था। कुछ कृषि उत्पादों पर तो आज तक टैक्स माफ नहीं हुआ है।

हमारी राजनैतिक व्यवस्था गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी, छोटे किसान के विषय में भाषण तो बहुत देती है किन्तु इन चारों के उत्पादनों और उपभोग की वस्तुओं पर भारी कर लगाकर शिक्षा, स्वास्थ,सस्ता आवागमन आदि पर खर्च करती है। यदि ऐसी विपरीत परिस्थितियों में छोटा किसान आत्महत्या करता है तो विचार करिये कि दोष किसान का है या समाज का है या हमारी राजनैतिक व्यवस्था का? ग्रामीण अर्थव्यवस्था को चौपट करके शहरी अर्थव्यवस्था का प्रोत्साहन इससे अतिरिक्त अन्य कोई परिणाम नहीं दे सकता। मैं चाहता हूँ कि किसान आत्महत्या पर गंभीरता से विचार करके इसका समाधान खोजा जाना चाहिए।

मंथन कमांक –10

राष्ट्रभक्त कौन? पंडित नेहरू या नाथु राम गोडसे?

भारत मे दो धारणाए लम्बे समय से सकिय रही है। कटटरवादी हिन्दूत्व की अवधारणा 2 हिन्दूत्व विरोधी अवधारणा। स्वतंत्रता संघर्ष मे महात्मा गांधी ने उदारवादी हिन्दुत्व की अवधारणा प्रस्तुत की किन्तु उपरोक्त दोनो अवधारणाओ का गांधी को समर्थन नही मिला। गोडसे कटटरवादी हिन्दूत्व की धारणाओ से ओत प्रोत था तो पंडित नेहरू हिन्दुत्व विरोधी अवधारणाओ के प्रतीक रहे।

व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं। 1 संचालक 2 संचालित। संचालक को अंग्रेजी मे मोटिवेटर कहते है और संचालित को मोटिवेटेड। जो विचारधारा संचालक की मृत्यु के पश्चात भी बढती जाती है वह विचार धारा वाद बन जाती है और जो संचालित होते है वे ऐसी विचार धारा के भक्त हो जाते है। स्वामी दयानंद हेडगेवार गांधी संचालक की श्रेणी मे माने जा सकते है। इसी तरह पंडित नेहरू को भी हम संचालक मान सकते है और गोडसे को संचालित । स्पष्ट है कि संचालक बुद्धि प्रधान होता है संचालित भावना प्रधान। गोडसे किसी विचार धारा से

प्रभावित था, नेहरू की अपनी स्वयं की विचार धारा थी। नेहरू ने गांधी के साथ स्वतंत्रता संघर्ष मे कंधे से कंधा मिलाकर काम किया किन्तु नेहरू स्वतंत्रता आंदोलन को छोडकर किसी भी मामले मे कभी गांधी विचारो से सहमत नही रहे । गोडसे कटटर वादी हिन्दुत्व की विचार धारा के प्रति पूर्ण समर्पित था तो नेहरू किसी के प्रति कभी समर्पित नही रहे।

स्वतंत्रता के शीघ्र बाद गोडसे ने गांधी के शरीर की हत्या कर दी और पंडित नेहरू ने विचारो की । गांधी हत्या के साथ गांधी युग भी समाप्त हो गया और गांधी विचार भी । क्योकि एक पक्ष गांधी के नाम का विरोधी था तो दूसरा गांधी विचार का। मै यह कह सकता हूँ कि गांधी की हत्या गोडसे के मूर्खता पूर्ण कार्य का परिणाम थी। गोडसे की इस मूर्खता ने पंडित नेहरू का काम और आसान कर दिया क्योकि यदि गांधी जीवित रहते तो पंडित नेहरू को परेशानी हो सकती थी। गोडसे की मूर्खता ने संध को भी अल्पकाल के लिये प्रतिस्पर्धा से बाहर कर दिया। जिससे नेहरू जी को और आसानी हो गई।

पंडित नेहरू का कार्य ठीक था और नीयत पर हमेशा संदेह रहा। उनका व्यक्ति गत जीवन भी गांधी के विपरीत था तथा सामाजिक जीवन भी । गांधी अकेन्दित और न्यूनतम शासन के पक्षधर थे तो नेहरू केन्द्रित ओर अधिकतम शासन के । गांधी किसी की नकल न करके देश काल परिस्थिति अनुसार स्वतंत्र कार्य प्रणाली के पक्षधर थे तो नेहरू पश्चिम या साम्यवाद की नकल करते थे। दूसरी ओर गोडसे का कार्य गलत था किन्तु नीयत ठीक थी । गोडसे की नीयत मे अंध राष्ट भक्ति थी तो नेहरू की नीयत मे व्यक्तिगत और परिवारिक स्वार्थ भी छिपा हुआ था। नेहरू ने लम्बी जेल काटी । इस उम्मीद के साथ कि स्वतंत्र भारत मे उन्हे कुछ न कुछ सत्ता का लाभ मिलेगा। दूसरी ओर गोडसे यह जानता था कि गांधी हत्या के बाद उसे फांसी ही होगी, और जीवित रहने का कोई व्यक्गित या पारिवारिक लाभ नही मिलेगा । प्रश्न उठता है कि दोनो की तुलना मे ठीक कौन? यह स्पष्ट है कि गोडसे के कार्य और नेहरू की सोच ने मिलकर देश को अपूर्णनीय क्षति पहुंचाई और आज तक उसका परिणाम भारत भुगत रहा है। प्रश्न उठता है कि यदि एक पिता ने अपने परिवार के कष्ट दूर करने के लिये किसी ज्योतिषी के समझाने से अपने पूत्र की बलि चढा दी तो उस पिता ने किस सीमा तक गलत किया । एक मूर्ख ने अपने पिता द्वारा बहुत मेहनत से इकठठा की गई चंदन की लकडी को चाय बनाने मे जला दिया तो पूत्र कितना अपराधी? यदि किसी मूर्ख पुत्र ने अपने पिता की गर्दन मे लिपटा जहरीला साप देखकर साप सहित गर्दन काट दी तो पुत्र कितना अपराधी ? यदि गोडसे ने किसी विचार धारा से प्रभावित होकर गांधी हत्या को ही राष्ट्र की समस्याओ का उचित समाधान मानकर उनकी हत्या कर दी तो गोडसे का कार्य कितना गलत माना जाय और कितनी गलत? यदि किसी व्यक्ति का कार्य गलत होता है तो कानून उसे दंडित करता है। इस तरह गोडसे को कानून के द्वारा फांसी दिया जाना उचित कदम है। किन्तु भारत मे अभिव्यक्ति की आजादी है। ऐसी आजादी का दुरूपयोग करके कोई संगठन सामान्य युवको को गलत दिशा मे जाने का उत्प्रेरित करे तो ऐसे संगठन की विचार धारा को समाज ही चुनौती दे सकता है, कानून नही, सरकार नही। दुर्भाग्य है कि भारत मे ऐसी विचार धारा भी आज तक विस्तार पा रही है क्योकि उसे चुनौती देने की अपेक्षा उसकी गलतियो का लाभ उठाने का प्रयास हो रहा है।

भारत के लिये आदर्श स्थिति होती कि गोडसे सरीखा देश भक्त बालक गांधी के सम्पर्क मे आया होता तो आज नेहरू की विचार धारा की तुलना मे गांधी की विचार धारा गोडसे के माध्यम से अधिक अच्छी तरह स्थापित हो पाती परन्तु ऐसा नही हुआ और गोडसे एक गलत विचार धारा के प्रभाव मे चला गया और उसके दुष्परिणाम आज तक हम देख रहे है।

वर्तमान स्थिति मे अब पुनः भारत को तीस जनवरी 1947 से अपनी विचार यात्रा प्रारंभ करनी चाहिये। दोनो ही विचार धाराए भारत के लिये धातक है। चाहे वह गोडसे की हो या नेहरू की । गोडसे से घृणा और नेहरू का महिमामंडन भारत के लिये घातक है। क्योकि गोडसे की किया गलत थी नीयत राष्ट भक्ति की और नेहरू की किया ठीक थी नीयत अपने व्यक्तिगत उत्थान की। दोनो की उचित समीक्षा करके भारत को नये मार्ग पर चलना चाहिये । मेरा स्पष्ट मत है कि भारत को कटटर वादी हिन्दूत्व और विदेशो की अन्धाधुंध नकल का मार्ग छोडकर अपने भारतीय यथार्थ को देश काल परिस्थिति की कसौटी पर कसकर नया मार्ग तलाशना चाहिये । गांधी हमारे आदर्श थे, हैं और भविष्य मे भी मार्ग दर्शक बने रहेंगे।

प्रश्नोत्तर

आचार्य पंकज,वाराणसी

प्रश्नः—मैं जानता हूँ कि आप अनेक गंभीर तथा विश्वस्तरीय विषयों पर लीक से हटकर मौलिक विचार रखते हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि आपकी कही कई बातें प्रारंभ में गलत दिखती हैं किन्तु बाद में सत्य सिद्ध होती हैं। किन्तु आपने पंडित नेहरु जैसे देशभक्त की तुलना में नाथूराम गोडसे जैसे हत्यारे को देशभक्त लिखकर पूरी तरह सत्य की अन्देखी की है। पंडित नेहरु ने गॉधी जी के कन्धे से कन्धा मिलाकर स्वतंत्रता संघर्ष में भाग लिया। कई बार जेल भी काटी। सम्पन्न परिवार की सभी संभव सुख सुविधाएँ छोडकर दर दर भटकते रहे। दूसरी ओर रहा गोडसे जिसका स्वतंत्रता संग्राम में कभी कोई योगदान नहीं था। उसने अपने पूरे जीवन में यदि कोई काम किया तो वह था गॉधी हत्या का। गोडसे ने यह एक काम छोडकर देश या समाज के लिये कुछ और किया हो तो आप बताइये। ऐसे व्यक्ति को महिमा मंडित करने में आपसे कुछ भूल हुई है। कृपया मार्ग दर्शन करें।

उत्तरः— मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ कि स्वतंत्रता के पूर्व पंडित नेहरु का त्याग बहुत ही उल्लेखनीय रहा है। स्वतंत्रता के पूर्व नाथूराम गोडसे का कोई योगदान नहीं रहा और यदि रहा भी होगा तो वह स्वतंत्रता के प्रयासों के विपरीत ही होगा किन्तु स्वतंत्रता के बाद पंडित नेहरु के सारे प्रयास गॉधी विचारधारा तथा समाज सशक्तिकरण के विपरीत रहे। जबकि गोडसे का तो गॉधी हत्या के बाद इतिहास ही समाप्त हो गया । मैं मानता हूँ कि गोडसे का कार्य इतिहास के लिए लम्बे समय तक कलंक बना रहेगा क्योकि गोडसे ने जो अपराध किया वह कभी माफ करने लायक नहीं है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि पंडित नेहरु ने देश को जो विपरीत दिशा दी उसके लिए पंडित नेहरु मांफ करने योग्य हैं। यदि कोई शराबी शराब के नशे में अपने पिता की हत्या कर दे तो कानून उस हत्यारे पुत्र को दण्डित करेगा और समाज उस पुत्र को माफ करके शराब के विरुद्ध अभियान चलायेगा जिससे कोई भविष्य में शराब के नशे में ऐसी गलती न करे। कानून ने गोडसे को सजा दे दी गोडसे को ऐसा विपरीत कार्य करने के लिए प्रेरित करने वाली विचारधारा 70 वर्षो बाद भी तेजी से फल फूल रही हैं और समाज आज सिर्फ गोडसे से घृणा मात्र कर रहा है । निश्चित ही इस विचारधारा के निरंतर विस्तार में न कोई गॉधी की भूमिका है और न ही गोडसे की। यदि इसके विस्तार में किसी की गलत भूमिका रही तो वह पंडित नेहरु ,अम्बेडकर आदि की ही मानी जा सकती है जिन्होने स्वतंत्रता संघर्ष के लिए गॉधी का भरपूर उपयोग किया और स्वतंत्रता के प्रांरभ से ही गॉधी विचारधारा को बिल्कूल छोड दिया। मैं स्पष्ट कर दूँ कि गॉधी के जीवित रहते ही नेहरु,अम्बेडकर आदि गॉधी की स्वतंत्रता पश्चात की किसी योजना से सहमत नही थे। मैं कह सकता हूँ कि वर्तमान में जो दो विपरीत विचारधाराएँ भारत में दिख रही है उनमें एक गॉधी का स्पष्ट विरोध करके आगे बढ रही है तो दूसरी गॉधी को माला पहनाकर, अपने नाम के साथ गॉधी शब्द जोडकर, खादी और चरखा का ढोंग करके,तथा गॉधी विचारधारा के विपरीत चलकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रही है। क्या यह हमारे लिए गंभीर चिंता का विषय नहीं है कि दोनों विचारधाराएँ एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत होते हुए भी तथा गॉधी विचार विरोधी होते हुए भी निरंतर आगे बढती जा रही हैं और हम किसी तीसरी दिशा में आगे नहीं सोच पा रहे। आप सोचिये कि वर्तमान स्थिति में इन दोनों विचारधाराओं में से मैं किसकी प्रशंसा करु और क्यों करुं?

वर्ष 2016 की सबसे बडी घटना, नोटबंदी

वर्ष 2016 की सबसे बडी घटना नोटबंदी को माना जा रहा है। अच्छे अच्छे विचारक भी यह भविष्यवाणी नहीं कर पा रहा है कि इसका कुल मिलाकर अच्छा प्रभाव होगा या बुरा। मैं तो कोई भविष्यवक्ता हूँ ही नहीं किन्तु दो बाते मुझे स्पष्ट दिख रही हैं—

1. वैसे तो मैं पूरे जीवन में जीडी पी और सेंसेक्स को कभी नहीं समझा किन्तु लोगों की बाते सुनते सुनते कुछ कुछ आभास होने लगा। नोटबंदी के कारण भारत की जी डी पी दो प्रतिशत से अधिक घट सकती है। इसी तरह अर्थ व्यवस्था में प्रारंभिक तौर पर 20 प्रतिशत की गिरावट आ सकती है। आम लोगों द्वारा उपभोक्ता वस्तुओं का उपयोग कम हो रहा है, मजदूरी भी घटेगी ही। व्यापारियों पर भी 20 प्रतिशत प्रभाव पडेगा और इसलिए उन्हें भी अपने खर्चे उसी अनुपात में घटाने हैं। शादी विवाह से लेकर खेलकूद, मनोरंजन, यात्रा, धार्मिक कार्य, आदि में भी गिरावट देखी जा रही है। चुनावों में भी खर्च और आमदनी बहुत घटना संभव है। चुनावों के माध्यम से जो पैसा जनता के बीच आता था वह भी कम हो जायेगा। आम लोगों की जीवन पद्धति में एक भूचाल सा आया हुआ है। औसत जिन्दगी ठहर सी गई है।

2. नक्सलवाद कश्मीर का आतंकवाद या अन्य आपराधिक गतिविधियों में भी कमी देखी जा रही है। भ्रष्टाचार कुल मिलाकर बहुत कम हो जायेगा। सरकार का टैक्स बहुत अधिक बढ़ जायेगा और सरकार मजबूत होगी। महंगाई ऋणात्मक हो सकती है क्योंकि आम लोगो का जीवन स्तर नीचे होने से कयशक्ति घटेगी। जमीन और मकान बहुत सस्ते होंगे। अन्य वस्तुऍं भी सस्ती होंगी। टैक्स चोरी न के बराबर हो जायेगी।

उपरोक्त दोनों स्थितियों में कितना अच्छा होगा कितना बुरा इसका आकलन आप करिये किन्तु दो बातों में मैं पूरी तरह स्पष्ट हूँ – 1 मोदी जी की नोटबंदी योजना को असफल करने में भारत के बैंको का बहुत बडा योगदान है। अधिकांश बैंको में चाहे भ्रष्टाचार से या आपसी संबंधो के आधार पर गलतियॉ की गई है। चाहे वे शहर के बैंक हो या ग्रामीण स्तर के।

2 नोटबंदी का आदेश वापस नहीं होगा। चाहे इसका प्रभाव कुछ भी हो। ऐसी स्थिति में मेरे विचार में यह आदेश अच्छा था या बुरा इसकी समीक्षा के साथ साथ हमें यह करना चाहिए कि इसका दुष्प्रभाव कम से कम करने में हम क्या योगदान कर सकते है। मेरा आपसे निवेदन है कि अच्छे बुरे की समीक्षा करते रहे। नरेन्द्र मोदी के कदम की प्रशंसा आलोचना करते रहे किन्तु इस कार्य को सफल करने में अपना योगदान अवश्य दें।

मेरा अपना अनुभव है कि भारत में लगभग शतप्रतिशत लोग किसी न किसी रुप में कानून तोडकर कार्य करने के अभ्यस्त हैं जिसे दो नम्बर कहा जाता है। ऐसे कार्य में शायद ही अपवाद स्वरुप कोई बचा हो। प्रधानमंत्री से लेकर एक भिखारी तक कहीं न कहीं कानून के विरुद्ध कार्य करता है। यह अलग बात है कि अन्य सब लोग अपने को ईमानदार सिद्ध करने के लिए व्यापारियों और सरकारी कर्मचारियों पर सीधा आरोप लगा देते हैं और ये दोनों बेचारे किसी के खिलाफ कुछ नहीं बोल पाते। मुझे ऐसा लगता है कि दो नम्बर का व्यवसाय जी डी पी बढाने में मदद करता है तथा कानूनों का उल्लंघन सुव्यवस्था में सहायक भी होता है। यदि किसी देश में टैक्स बहुत ज्यादा हो तथा कानून भी ज्यादा हो तो ऐसा होना स्वाभाविक है। भारत एक ऐसा ही देश है। अच्छा होगा कि सरकार इस कदम को लाभदायक बनाने के लिए टैक्सों और अनावश्यक कानूनों में भारी कमी कर दें तो संभव है कि इस नोटबंदी का अधिक लाभ हो सकता है।

उत्तरार्ध

निवेदन

हम आप सब मिलकर लम्बे समय से चार विशयों को आधार बनाकर जन जागरण करते रहे हैं। साथियों की सलाह है कि प्रबल जनमत जागरण के लिए एक बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करना निश्चित सफलता के लिए आवश्यक होता है। इसलिए एक नये प्रस्ताव पर भी विचार करना है। जो इस प्रकार है।

ग्राम संसद

1. पूरे देश को 10 लाख ग्राम यूनिट में (ग्राम सभा) में विभाजित करके उन्हें ग्राम संसद का स्वरूप दिया जाए और उन्हें वर्तमान सवंधिान प्रदत्त 29 अधिकार तत्काल दिये जायें।

2. भविष्य में किसी भी संविधान संशोधन के लिए ग्राम संसद की स्वीकृति अनिवार्य हो।

3. ग्राम संसदों द्वारा निर्वाचित अस्थायी संविधान सभा का गठन किया जाए। इस सभा के द्वारा परिवार व्यवस्था, राइट टू रिकॉल, जीवन सुरक्षा भत्ता, सहित अन्य सभी आवश्यक संविधान संशोधनों पर प्रस्ताव तैयार किए जाए। उक्त प्रस्ताव पर संविधान सभा और वर्तमान संसद द्वारा दिए गए अंतिम स्वरूप के अनुसार वर्तमान संविधान संशोधित हो जाए। यदि संविधान सभा और वर्तमान संसद किसी संशोधन पर अंतिम रूप से असहमत हों तो ग्राम संसदो द्वारा लिया गया निर्णय अंतिम रूप से मान्य हो।

दिनांक सत्रह अठारह तथा उन्नीस मार्च दो हजार सत्रह को नोएडा मे स्थान कम्युनिटी सेन्टर, होटल पार्क प्लाजा के पीछे, सेक्टर–55 नोएडा, उत्तर प्रदेश पर त्रिदिवसीय राष्ट्रीय सम्मेलन की योजना बनी है। सत्रह तारीख को दोपहर दो बजकर तीस मिनट से उदघाटन तथा उन्नीस तारीख की शाम समापन सत्र होगा। बीच के काल मे लगातार विचार मंथन तथा भविष्य की योजनाए बनेगी। मुख्य विचार ग्राम संसद संबंधी उपर लिखे प्रस्ताव पर होगा तथा साथ ही विचार मंथन योजना को और विस्तार देने पर भी चर्चा हागी। सभी साथियों को इस सम्मेलन मे अवश्य आना चाहिये। क्योकि इस सम्म्लेन मे आगे के लिये पदाधिकारियों का भी चयन होगा। भोजन और निवास की व्यवस्था आयोजन समिति करेगी। यदि किसी साथी को मार्ग व्यय की दिक्कत हो तो वे अपने क्षेत्र मे चंदा इकठठा करके व्यवस्था कर सकते है। किसी जिले से यदि पांच से अधिक कार्यकर्ता आते है तो फोन से या पत्र द्वारा अनुमति अवश्य ले लें।